ब्रह्मचर्य-तपोत्तमम्

परमपूज्य व्याख्यानवाचस्पति आचार्यदेव
श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज...

भारतीय स्वर्णयुग के पावन प्रभात की प्रथम किरण ने जब वसुन्धरा के अंचल को अपनी चित्र-विचित्र रेखाओं से अलंकृत किया, तो उसके आलोक से आलोकित होकर परमोच्च पदासीन अमरराज ने भी अपने देवताओं सहित स्वनामधन्य पुण्यप्रधान इस भारत देश की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। उस समय हमारा यह देश कितना महत्त्वशाली एवं समृद्धि-वैभव वाला होगा, यह कल्पनातीत है? निम्नांकित पद्य से आज भी हम इस कथन को सत्य के अत्यधिक समीप पाते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

वस्तुतः है भी यह ऐसा ही देश, जिसकी प्रशंसा में देवता गीत गाकर यह कहें कि स्वर्गापवर्ग को प्रदान करने वाली इस भारतभूमि में वे ही धन्य हैं, जो देवता से पुनः पुरुष हो, इस भूमि पर निवास करते हैं। इसकी महत्ता का एकमात्र कारण यही था कि हमारे देश के उस गौरव-गरिमामय वैभव-विकास के आश्रयभूत परम स्वार्थत्यागी एवं त्रिकालदर्शी मुनि, महर्षि तथा महात्माओं ने सामाजिक जीवन को नियमबद्ध करने, ईश्वरीय सत्ता को स्थिर रखने तथा मानवीय सृष्टि को कुमार्गगामिनी होने से बचाने के उद्देश्य से अनेकानेक शास्त्रों की रचना के साथ वे अमूल्य, उच्च तथा स्वाभाविक विधान निर्मित किए जिनका अनुकरण कर हमारा यह देश सहज ही में वह गौरवमय परमोच्चपद प्राप्त कर सकता था। प्राचीन महर्षियों के प्रणीत सत्सैद्धान्तिक विधानों में ब्रह्मचर्य को प्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला। संसार की प्राथमिक अवस्था में यह उनकी अपूर्व योग्यता थी, जिसके फलस्वरूप कई शताब्दियों तक ब्रह्मचर्य-प्रथा का प्रचार धार्मिक रूप से भारत में ही नहीं समस्त भूमंडल में उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और ब्रह्मचर्यव्रतधारी तपोनिष्ठ भारत के गुरुतम गौरव को बढ़ाते रहे। अतएव यह निर्विवाद सिद्ध है कि भारत देश के भारतीय गौरव का मूलतत्त्व ही ब्रह्मचर्य है। इसके महिमाशाली माहात्म्य से आज कई शास्त्र भरे पड़े हैं, उन्होंने एक स्वर से इसकी प्रशंसा कर अपनी शास्त्रीय सार्थकता सम्पादित की है।

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है-

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।

शरीर, मन और वचन से सब आस्थाओं में सर्वदा और सर्वत्र मैथुन-(संभोग)-त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं। उपर्युक्त मत से कायिक मानसिक और वाचिक ये तीन प्रकार के ब्रह्मचर्य होते हैं। इन तीनों से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले व्यक्ति सम्पूर्ण ब्रह्मचारी होने योग्य हैं। विविध ब्रह्मचर्य में मानसिक ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इसका पालन करने पर कायिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का स्वभावतः पालन हो जाता है। प्रायः बहुत से मनुष्य मनोविज्ञान का महत्त्व न जानकर मानसिक ब्रह्मचर्य की अवहेलना करते हैं। वे वास्तव में मूर्खता करते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि मन की प्रेरणा से ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ प्रवृत्ति करती हैं।

कहा गया भी है -

यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते।

जिसका मन में चिंतन किया जाता है, वही वाणी से निकलता है। जो कुछ वाणी से निकलता है, वही कर्म किया जाता है और जैसा कुछ कर्म किया जाता है वैसा उसका फल भी मिलता है। अतः मन की स्पष्ट रूप से प्रधानता सिद्ध है। जो मनुष्य मन पर अधिकार नहीं कर सकता। वह किसी भी प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। गीता में कहा भी गया है कि 'मन एवं मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः।'

जिसकी मनःसाधना सिद्ध हो गई, वह दूसरे विषयों पर सहज ही अधिकार कर सकता है। अतः मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करना सर्वश्रेष्ठ है। एक पौराणिक शिक्षाप्रद कथा भी है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी समय ब्रह्माजी तपोवन में तपस्या कर रहे थे। तपस्या करते-करते उन्हें लगभग ३०० वर्ष बीत गए। यह देखकर इंद्र को अत्यंत भय पैदा हुआ कि ऐसा न हो कि इनकी तपस्या सिद्ध होने पर मेरे इंद्रासन की मर्यादा लुप्त हो जाए? अतः इन्द्र ने तिलोत्तमा अप्सरा को तपोभंग करने के लिए ब्रह्माजी के पास भेजा। उसने तपोवन में आकर अपने आकर्षक हाव-भाव तथा कटाक्षों द्वारा ब्रह्माजी पर अपना जादू डाला और उसका ऐसा असर हुआ कि ब्रह्माजी अपने आपको अधिक न सँभाल सके। अप्सरा जिस ओर अपने पाँव रखती, ब्रह्माजी उसी ओर वासनापूर्ण कामदृष्टि से टकटकी लगाकर निहारते रहे। अप्सरा थोड़े ही समय में इंद्र के पास लौट आई और ब्रह्माजी अपनी मानसिक विह्वलता से यों ही तरसते रहे, वे अपनी तीन हजार वर्ष तक की हुई तपस्या के फल से क्षण भर में हाथ धो बैठे। इसलिए सर्वप्रथम कायिक और वाचिक ब्रह्मचर्य के मूलभूत मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित एवं हितकर है। ब्रह्मचर्य के भेदोपभेद जानकर उसके महत्त्वतथा प्रभाव की ओर ध्यान देना अनुचित एवं अप्रासंगिक न होगा।

ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है, वाणी या लेखनी से उसका वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। ब्रह्मचर्य वह उग्रव्रत है, जिसकी साधना से मनुष्य नर से नारायण (परमात्मा) बनता है और वह सबका पूज्य होता है।

आचार्य देवश्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज लिखते हैं-

चिरायुषः सुसंस्थानां दृढ़संहनना नराः।
तेजस्विनो महावीर्याः भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः।
प्राणभूतं चरित्रस्य परब्रह्मैक कारणम्।
समाचरन् ब्रह्मचर्यं पूजितैरपि पूज्यते।।

जो मनुष्य विधिवत् ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे चिरायु, सुंदर शरीर, दृढ़संहननी, तेजस्वितापूर्ण और बड़े पराक्रमी होते हैं। ब्रह्मचर्य सच्चरित्रता का प्राणस्वरूप है और परब्रह्मप्राप्ति का मुख्य कारण है। इसका पालन करता हुआ मनुष्य पूज्य लोगों के द्वारा भी पूजा जाता है।

इस प्रकार कई महर्षि, मुनि और शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य की महिमा गाई है और इसकी साधना से अमोघ सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। यहाँ तक कि अनन्त सुखमय मोक्षपद भी इसी से मिलता है।

जिन अज्ञानियों का यह मन्तव्य है कि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति, स्वर्गं नैव च नैव च" अर्थात पुत्ररहित पुरुष को मुक्ति नहीं मिलती। और स्वर्ग तो उसे कभी मिल ही नहीं सकता। यह कथन केवल अज्ञानमूलक है, क्योंकि प्राचीन समय में अनेक महर्षि, हनुमान, भीष्म पितामह आदि के पुत्र नहीं थे, परन्तु वे मुक्तिगामी हुए हैं। उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का परिपालन करके मुक्ति प्राप्ति की है। पौराणिक कथन भी है कि 'स्वर्गं गच्छन्ति ते सर्वे, ये केचिद् ब्रह्माचारिणः' जो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं वे सभी स्वर्ग में जाते हैं, उनमें कतिपय में मोक्ष भी प्राप्त करते हैं।

पुत्रप्राप्ति होने से ही कोई मनुष्य मोक्षाधिकारी या स्वर्गाधिकारी नहीं बन सकता। पुत्र यदि असदाचारी और लम्पट हुआ तो उसकी चिंता से पिता के उभय लोक बिगड़ जाते हैं। वह इस लोक में अशुभ गतियों का पात्र बन जाता है। इसी प्रकार व्याभिचारी का पुत्र कभी सुयोग्य और सदाचारी नहीं बन सकता। वह अपने कुत्सित आचरणों द्वारा अपने विशुद्ध कुल को भी कलंकित किए बिना नहीं रहता। ब्रह्मचारी के पुत्र प्रतापी 'सदाचारी और सदुपदेशशील होते हैं। किंवदन्ती भी है कि पारस के प्रसंग से लोहा सोना बन जाता। अखण्ड ब्रह्मचारी पारस के समान है। जिसके संसर्ग में अबोध व्यक्ति भी सुवर्ण सदृश गुणवान और जनपूज्य बन जाता है। ब्रह्मचर्य में कितनी शक्ति है? यह अब भलीभाँति समझ में आ सकता है।

ब्रह्मचर्य का पालन साधु, मुनि या संन्यासी ही कर सकता है, गृहस्थ नहीं' ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। ब्रह्मचर्य तो साधु और गृहस्थ दोनों का अमूल्य अलंकार है। केवल योग्यता और शक्ति के तारतम्य का ध्यान रखते हुए गृहस्थ एवं साधु की ब्रह्मचर्य-मर्यादा में कुछ भेद है। गृहस्थ को अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त संसार की अन्य समस्त महिलाओं को माता व भगिनी की दृष्टि से देखना चाहिए। स्त्री-प्रसंग करते समय भी ऋतुकालाभिगामी होकर अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।

जो गृहस्थ त्रिधा (मन, वचन और काया) योग से अखण्ड ब्रह्मर्य का पालन करते हैं और कभी भी किसी प्रकार से विकाराधीन नहीं होते, उनका यह व्रत असिधाराव्रत कहलाता है। दिनकरी टीकाकार ने लिखा है कि एकस्यामेव शय्यायां मध्ये खड्गं विधाय स्त्री पुंसौ यत्र ब्रह्मचर्येण स्वपितः तदसिधारा व्रतम् अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों एक ही शय्या पर जहाँ ब्रह्मचर्य से शयन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं, कभी मन, वचन, काया को विकृत नहीं होने देते उसका नाम असिधाराव्रत है। संसार में ऐसे स्त्री-पुरुष विरले ही हैं। जैन-शास्त्रों में इसके विषय में विजय सेठ-सेठानी का उदाहरण विद्यमान है। शास्त्रकार इस प्रकार के ब्रह्मचारियों के विषय में स्पष्ट कहते हैं -

देव दाणव गंधबा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभयारी नमस्संति, दुक्करं जे करेंति ते।।

जो मनुष्य असिधारा व्रत के समान ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उनको देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं। काल के प्रभाव से उस सुवर्ण-युग का अन्त हो गया और वह किरण भी प्रायः सदा के लिए अस्त हो गई। तभी तो आज सर्वत्र असदाचार व व्यभिचार आदि का घोर अंधकार छाया हुआ है। इसी अंधकार में साधु और गृहस्थ अज्ञानी एवं कामी बनकर अपने कर्त्तव्य से च्युत हो गए। जहाँ गृहस्थ को केवल स्वदारा संतोष-व्रत का अधिकार था, वहाँ वह अपनी वासनापूर्ति के लिए कई अन्य अबलाओं का सतीत्व नष्ट करने में नहीं चूकता। इसी प्रकार जहाँ साधु को एकान्तवासी बनकर मानसिक ब्रह्मचर्य-तप की सर्वोत्तम साधना करनी थी, वहाँ वह बिना किसी व्यवधान के सुन्दरियों से प्रेमालाप और उनके सम्पर्क में पकड़कर अपने अमूल्य ब्रह्मचर्य को दूषित करने में भी नहीं हिचकता। यह है विषम दशा आज के देश और समाज की जिसे देखकर हृदय आन्तरिक वेदना से सन्तप्त हुए बिना नहीं रहता। अतएव आत्मोन्नति और लोकोपकार के लिए प्रत्येक गृहस्थ एवं साधु को-

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरिता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानवः।।

दूसरे तप कुछ भी नहीं है, ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम तप है। जिसने अपने वीर्य को वश में कर लिया वह मनुष्य नहीं देवता है। यह जानकर अमोघ फल प्रदान करने वाले ब्रह्मचर्य तप की साधना करनी चाहिए।

पुरुषों के समान महिलाओं लिए भी अपने शील की सर्वप्रकार से रक्षा करना अत्यावश्यक है। स्त्रियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य। जो स्त्रियाँ अपने पति के अनुकूल रहकर अपने शीलव्रत का अखंड रूप से पालन करती हैं, मन, वचन और काया से कभी परपुरुष का स्मरण नहीं करतीं और न उसे देखने में अभिलाषा रखती हैं। परिचित या अपरिचित अन्य पुरुषों के साथ एकान्त स्थल में न कभी वार्तालाप करती हैं और न किसी प्रकार का संपर्क रखती हैं। अपने पति से संतुष्ट रहकर उसके चित्त में कभी उद्वेग पैदा नहीं होने देतीं। यदि पैदा हुआ भी तो उसको दूर करने का प्रयत्न करती हैं। पति एवं कुटुम्बियों को सदाचाररत बनाती हैं और अपनी होशियारी से कभी उनको कुमार्गगामी नहीं होने देती हैं, वे स्त्रियाँ उत्तम स्त्रियाँ हैं।

जो स्त्रियाँ अपने पति को तो किसी प्रकार का सन्ताप नहीं देती और अपने शील को भी खण्डित नहीं होने देती, परन्तु अपने कुटुम्ब को अनुकूल नहीं बना सकती। कभी-कभी कौटुम्बिक वातावरण अशान्त बनाकर अपने पति के सन्ताप का कारण बन जाती है। अपने स्वार्थ के लिए घर की परिस्थिति को लक्ष्य में न रखकर हठाग्राह या मनमुटाव का, चिंता या परेशानी का कारण बनी रहती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org